आर्यिकाओं की आचार-पद्धति

प्रो. (डॉ.) फूलचन्द जैन

'आर्यिका' शब्द का प्रयोग दिगम्बर परम्परा में समणी अथवा साध्वी के लिए हुआ है जो पंच महाव्रतधारी होने पर भी विशिष्ट मर्यादाओं में रहकर आचार का पालन करती है। विद्वान् लेखक ने आर्यिका के वेष, वसतिका, समाचारी, आहारार्थगमन-विधि आदि पर प्रकाश डालने के साथ श्रमणों के साथ व्यवहार में मर्यादाओं का भी उल्लेख किया है।

-सम्पादक

चतुर्विध संघ में आर्यिकाओं का स्थान

मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ में 'आर्यिका' का दूसरा स्थान है। श्वेताम्बर जैन परम्परा के प्राचीन आगमों में भी यद्यपि इन्हें अज्जा, आर्या, आर्यिका कहा है, किन्तु इस परम्परा में प्रायः 'श्रमणी' एवं 'साध्वी' शब्द का अधिक प्रयोग हुआ है। प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लेंकर अन्तिम तीर्थंकर महावीर तथा इनकी उत्तरवर्ती परम्परा में आर्यिका संघ की एक व्यवस्थित आचार पद्धति एवं उनका स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। श्रमण संस्कृति के उन्नयन में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका की सभी सराहना करते हैं। यद्यपि भगवान् महावीर के जीवन के आरम्भिक काल में स्त्रियों को समाज में पूर्ण सम्मान का दर्जा प्राप्त नहीं था, किन्तु इन्होंने जब समाज में स्त्रियों की निम्नस्थिति तथा घोर उपेक्षापूर्ण जीवन देखा तो भगवान् महावीर ने स्त्रियों को समाज और साधना के क्षेत्र में सम्मानपूर्ण स्थान देने में सबसे पहले पहल की और आगे आकर इन्होंने अपने संघ में स्त्रियों को 'आर्यिका' (समणी या साध्वी) के रूप में दीक्षित करके इनके आत्म-सम्मान एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। इसका सीधा प्रभाव तत्कालीन बौद्ध संघ पर भी पड़ा और महात्मा बुद्ध को भी अन्ततः अपने संघ में स्त्रियों को भिक्षुणी के रूप में प्रवेश देना प्रारम्भ करना पड़ा।

आचार विषयक दिगम्बर परम्परा के प्रायः सभी ग्रन्थों में जिस विस्तार के साथ मुनियों के आचार-विचार आदि का विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन मिलता है, आर्यिकाओं के आचार-विचार का उतना स्वतन्त्र विवेचन नहीं मिलता। साधना के क्षेत्र में मुनि और आर्यिका में किञ्चित् अन्तर स्पष्ट करके आर्यिका के लिए मुनियों के समान ही आचार-विचार का प्रतिपादन इस साहित्य में मिलता है। मूलाचारकार आचार्य वट्टकेर एवं इसके वृत्तिकार आचार्य वसुनन्दि ने कहा है कि जैसा समाचार (सम्यक्-आचार एवं व्यवहार आदि) श्रमणों के लिए कहा गया है उसमें वृक्षमूल, अभ्रावकाश एवं आतापन आदि योगों को छोड़कर अहोरात्र सम्बन्धी सम्पूर्ण समाचार आर्यिकाओं के लिए भी यथायोग्य

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप से समझना चाहिए।[1] इसीलिए स्वतंत्र एवं विस्तृत रूप में आर्यिकाओं के आचारादि का प्रतिपादन आवश्यक नहीं समझा गया।

वस्तुतः वृक्षमूलयोग (वर्षाऋतु में वृक्ष के नीचे खड़े होकर ध्यान करना), आतापनयोग (प्रचण्ड धूप में भी पर्वत की चोटी पर खड़े होकर ध्यान करना), अभ्रावकाश (शीत ऋतु में खुले आकाश में तथा ग्रीष्म ऋतु में दिन में सूर्य की ओर मुख करके खड्गासन मुद्रा में ध्यान करना) एवं अचेलकत्व (नग्नता) आदि कुछ ऐसे पक्ष हैं, जो स्त्रियों की शारीरिक-प्रकृति के अनुकूल न होने के कारण आर्यिकाओं के लिए मुनियों जैसे आचार का पालन सम्भव नहीं है। इसीलिए उन्हें उपचार से मूलगुणों का धारक माना है। इसलिए दिगम्बर परम्परा में स्त्रियों को तद्भव मोक्षगामी नहीं माना गया। क्योंकि मोक्ष के कारणभूत जो ज्ञानादि गुण तथा तप हैं, उनका प्रकर्ष स्त्रियों में सम्भव नहीं है। इसी तरह वे सबसे उत्कृष्ट पाप के फलभूत अन्तिम (सप्तम) नरक में भी नहीं जा सकतीं, जबकि पुरुष जा सकता है।

इसी तरह वस्त्र-ग्रहण की अनिवार्यता के कारण बाह्य परिग्रह तथा स्व-शरीर का अनुरागादि रूप आभ्यन्तर परिग्रह भी स्त्रियों में पाया जाता है और फिर शास्त्रों में वस्त्ररहित संयम स्त्रियों को नहीं बतलाया है। अतः विरक्तावस्था में भी स्त्रियों को वस्त्र धारण का विधान है। अतः निर्दोष होने पर भी उन्हें अपना शरीर सदा वस्त्रों से ढके रहना पड़ता है।[2] इसीलिए दिगम्बर परम्परा में स्त्रियों को तद्भव मोक्षगामी होने का विधान नहीं है।[3] आर्यिकाओं में उपचार से महाव्रत भी श्रमण संघ की व्यवस्था मात्र के लिए कहे गये हैं, किन्तु उपचार में साक्षात् होने की सामर्थ्य नहीं होती। यदि स्त्री तद्भव से मोक्ष जाती होती तो सौ वर्ष की दीक्षिता-आर्यिका के द्वारा आज का नवदीक्षित मुनि भी वंदनीय कैसे होता? वह आर्यिका ही उस श्रमण द्वारा वंदनीय क्यों न होती?[4]

विरक्त स्त्रियों को भी वस्त्र धारण के विधान में उनकी शरीर-प्रवृत्ति ही मुख्य कारण है, क्योंकि प्रतिमास चित्तशुद्धि का विनाशक रक्त-स्रवण होता है, कोख, योनि और स्तन आदि अवयवों में कई तरह के सूक्ष्मजीव उत्पन्न होते रहने से उनसे पूर्ण संयम का पालन सम्भव नहीं हो सकता।[5] इसीलिए इन्हीं सब कारणों के साथ ही[6] स्वभाव से पूर्ण निर्भयता, निराकुलता एवं निर्मलता का अभाव, परिणामों में शिथिलता का सद्भाव तथा निःशंक रूप में एकाग्रचिन्ता निरोध रूप ध्यान का अभाव होने के कारण ऐसा कहा गया है।[7] इस प्रकार पूर्वोक्त कारणों के साथ ही उत्तम संहनन के अभाव के कारण शुद्धोपयोग रूप परिणाम एवं सामायिक चारित्र की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है, अतः इनमें उपचार से ही महाव्रत कहे गये हैं।

श्वेताम्बर परम्परा के बृहत्कल्प में भी कहा है कि साध्वियाँ भिक्षु-प्रतिमाएँ धारण नहीं कर सकतीं। लकुटासन-उत्कटुकासन, वीरासन आदि आसन नहीं कर सकतीं। गाँव के बाहर सूर्य के सामने हाथ ऊँचा करके आतापना नहीं ले सकतीं तथा अचेल एवं अपात्र (जिनकल्प) अवस्था धारण नहीं कर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सकतीं।[8] इस सबके बावजूद श्वेताम्बर परम्परा में स्त्रियों को मोक्ष-प्राप्ति का अधिकारी माना गया है। बौद्ध परम्परा में भी स्त्री सम्यक्-सम्बुद्ध नहीं हो सकती।[9]

आर्यिका के लिए प्रयुक्त शब्द

वर्तमान समय में सामान्यतः दिगम्बर परम्परा में महाव्रत आदि धारण करने वाली दीक्षित स्त्री को 'आर्यिका' तथा श्वेताम्बर परम्परा में इन्हें 'साध्वी' कहा जाता है। दिगम्बर प्राचीन शास्त्रों में इनके लिए आर्यिका,[10] आर्या,[11] विरती,[12] संयती,[13] संयता,[14] श्रमणी[15] आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। प्रधान आर्यिका को 'गणिनी'[16] तथा संयम, साधना एवं दीक्षा में ज्येष्ठ वृद्धा आर्यिका को स्थविरा (थेरी)[17] कहा गया है।

आर्यिकाओं का वेष

आर्यिकाएँ निर्विकार, श्वेत, निर्मल वस्त्र एवं वेष धारण करने वालीं तथा पूरी तरह से शरीर-संस्कार (साज-शृंगार आदि) से रहित होती हैं। उनका आचरण सदा अपने धर्म, कुल, कीर्ति एवं दीक्षा के अनुरूप निर्दोष होता है।[18] वसुनन्दी के अनुसार-आर्यिकाओं के वस्त्र, वेष और शरीर आदि विकृति से रहित, स्वाभाविक-सात्त्विक होते हैं अर्थात् वे रंग-बिरंगे वस्त्र, विलासयुक्त गमन और भ्रूविकार-कटाक्ष आदि से रहित वेष को धारण करने वाली होती हैं। जो किसी भी प्रकार का शरीर-संस्कार नहीं करतीं- ऐसीं ये आर्यिकायें क्षमा, मार्दव आदि धर्म, माता-पिता के कुल, अपना यश और अपने व्रतों के अनुरूप निर्दोष चर्या करती हैं।[19]

सुत्तपाहुड तथा इसकी श्रुतसागरीय टीका में तीन प्रकार के वेष (लिंग) का कथन है-1. मुनि, 2. ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक-ऐलक एवं क्षुल्लक तथा 3. आर्यिका[20]। तीसरा लिंग (वेष) स्त्री (आर्यिका) का है। इसे धारण करने वाली स्त्री दिन में एक बार आहार ग्रहण करती है। वह आर्यिका भी हो तो एक ही वस्त्र धारण करे तथा वस्त्रावरण युक्त अवस्था में ही आहार ग्रहण करे।[21]

वस्तुतः स्त्रियों में उत्कृष्ट वेष को धारण करने वाली आर्यिका और क्षुल्लिका- ये दो होती हैं। दोनों ही एक बार आहार लेती हैं। आर्यिका मात्र एक वस्त्र तथा क्षुल्लिका एक साड़ी के सिवाय ओढ़ने के लिए एक चादर भी रखती हैं। भोजन करते समय एक सफेद साड़ी रखकर ही दोनों आहार करती हैं। अर्थात् आर्यिका के पास तो एक साड़ी है, पर क्षुल्लिका एक साड़ी सहित किन्तु चादर रहित होकर आहार करती है।[22] भगवती आराधना में भी क्षुल्लिका का उल्लेख मिलता है।[23]

भगवती आराधना में सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागरूप में औत्सर्गिक लिंग में चार बातें आवश्यक मानी गई हैं-अचेलता, केशलोच, शरीर-संस्कार-त्याग और प्रतिलेखन (पिच्छी)[24] किन्तु स्त्रियों के अचेलता (नग्नता) का विधान न होते हुए भी अर्थात् तपस्विनी स्त्रियाँ एक साड़ी मात्र परिग्रह रखते हुए भी उनमें औत्सर्गिक लिंग माना गया है। अर्थात् उनमें भी ममत्व त्याग के कारण उपचार से निर्ग्रन्थता का

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार होता है। परिग्रह अल्प कर देने से स्त्री के उत्सर्ग लिंग होता है।[25] इसीलिये सागार धर्मामृत में भी कहा है कि एक कौपीन (लंगोटी) मात्र में ममत्व भाव रखने से उत्कृष्ट श्रावक (ऐलक) भी महाव्रती नहीं कहलाता, जबकि आर्यिका साड़ी में भी ममत्व भाव न रखने से उपचरित महाव्रत के योग्य होती है।[26]

वस्तुतः स्त्रियों की शरीर-प्रकृति ही ऐसी है कि उन्हें अपने शरीर को वस्त्र से सदा ढके रखना आवश्यक होता है। इसीलिए आगम में कारण की अपेक्षा से आर्यिकाओं को वस्त्र की अनुज्ञा है।[27] श्वेताम्बर परम्परा के बृहत्कल्पसूत्र (5/19) में भी कहा है- नो कप्पइ निग्गंथीए अचेलियाए होत्तए- अर्थात् निर्ग्रन्थियों (आर्यिकाओं) को अचेलक (निर्वस्त्र) रहना नहीं कल्पता। आचार्य कुन्दकुन्दकृत प्रवचनसार की प्रक्षेपक गाथा में कहा होने पर भी आर्यिकाओं को अपना शरीर वस्त्रों से ढके रहना पड़ता है अतः विरक्तावस्था में भी उन्हें वस्त्र धारण का विधान है।[28]

दौलत 'क्रियाकोश' में कहा है कि आर्यिकायें एक सादी सफेद धोती (साड़ी), पिच्छी, कमण्डलु एवं शास्त्र रखती हैं। बैठकर करपात्र में आहार ग्रहण करती हैं तथा अपने हाथों से केशलुञ्चन करती हैं।[29] इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुण (उपचार से) और समाचार विधि का आर्यिकाएँ पालन करती हैं। साड़ी मात्र परिग्रह धारण करती हैं अर्थात् एक बार में एक साड़ी पहनती हैं- ऐसे दो साड़ी का परिग्रह रहता है।[30]

श्वेताम्बर परम्परा में साध्वी को चार वस्त्र रखने का विधान है। एक वस्त्र दो हाथ का, दो वस्त्र तीन हाथ के और एक वस्त्र चार हाथ का।[31] किन्तु ये वस्त्र श्वेत रंग के ही होने चाहिए। श्वेत वस्त्र छोड़कर विविध रंगों आदि से विभूषित जो वस्त्र धारण करती है वह आर्या नहीं, अपितु उसे शासन की अवहेलना करने वाली वेष-विडम्बनी कहा है।

आर्यिकाओं की वसतिका

श्रमणों की तरह आर्यिकाओं को भी सदा अनियत विहार करते हुए संयम-धर्म की साधना करते-कराते रहने का विधान है, किन्तु उन्हें विश्राम हेतु रात्रि में या कुछ दिन या चातुर्मास आदि में जहाँ - जब रुकना पड़ता है, तब उनके ठहरने की वसतिका कैसी होनी चाहिए? इस सबका यहाँ शास्त्रोक्त रीति से प्रतिपादन किया है।

गृहस्थों के मिश्रण से रहित वसतिका, जहाँ परस्त्री-लंपट, चोर, दुष्टजन तिर्यञ्चों एवं असंयत जनों का सम्पर्क न हो, साथ ही जहाँ यतियों का निवास या उनकी सन्निकटता न हो, असंज्ञियों (अज्ञानियों) का आना-जाना न हो ऐसी संक्लेश रहित, बाल, वृद्ध आदि सभी के गमनागमन योग्य, विशुद्ध संचार युक्त प्रवेश में दो, तीन अथवा इससे भी अधिक संख्या में एक साथ मिलकर आर्यिकाओं को रहना चाहिए।[32] श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार जहाँ मनुष्य अधिक एकत्रित होते हों- ऐसे राजपथ-गुख्यमार्ग, धर्मशाला और तीन-चार रास्तों के संगम स्थल पर आर्यिकाओं को नहीं ठहरना चाहिए। खुले

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान पर तथा बिना फाटक वाले स्थान पर भी नहीं रहना चाहिए।[33] जिस उपाश्रय के समीप गृहस्थ रहते हों वहाँ साधुओं को नहीं रहना चाहिए, किन्तु साध्वियाँ रह सकती हैं।[34]

वसतिकाओं में आर्यिकायें मात्सर्यभाव छोड़कर एक दूसरे के अनुकूल तथा एक दूसरे के रक्षण के अभिप्राय में पूर्ण तत्पर रहती हैं। रोष, वैर और मायाचार जैसे विकारों से रहित, लज्जा, मर्यादा और उभयकुल- पितृकुल, पतिकुल अथवा गुरुकुल के अनुरूप आचरण (क्रियाओं) द्वारा अपने चारित्र की रक्षा करती हुई रहती है।[35] आर्यिकाओं में भय, रोष आदि दोषों का सर्वथा अभाव पाया जाता है। तभी तो ज्ञानार्णव में कहा है शम, शील और संयम से युक्त अपने वंश में तिलक के समान, श्रुत तथा सत्य से समन्वित ये नारियाँ (आर्यिकाएँ) धन्य हैं।[36]

समाचार : विहित एवं निषिद्ध

चरणानुयोग विषयक जैन साहित्य में श्रमण और आर्यिकाओं दोनों में समाचार (समाचारी) आदि प्रायः समान रूप से प्रतिपादित हैं।[37] मूलाचारकार ने इनके समाचार के विषय में कहा है कि आर्यिकाएँ अध्ययन, पुनरावृत्ति (पाठ करने), श्रवण-मनन, कथन, अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन, तप, विनय तथा संयम में नित्य ही उद्यत रहती हुई ज्ञानाभ्यास रूप उपयोग में सतत तत्पर रहती हैं तथा मन, वचन और कायरूप योग के शुभ अनुष्ठान से सदा युक्त रहती हुई अपनी दैनिक चर्या पूर्ण करती हैं।[38]

किसी प्रयोजन के बिना परगृह चाहे वह श्रमणों की ही वसतिका क्यों न हो या गृहस्थों का घर क्यों न हो, वहाँ आर्यिकाओं का जाना निषिद्ध है। यदि भिक्षा, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय आदि विशेष प्रयोजन से वहाँ जाना आवश्यक हो तो गणिनी (महत्तरिका या प्रधान आर्यिका) से आज्ञा लेकर अन्य कुछ आर्यिकाओं के साथ मिलकर जा सकती है, अकेले नहीं।[39] स्व-पर स्थानों में दुःखार्त्त को देखकर रोना, अश्रुमोचन, स्नान (बालकों को स्नानादि कार्य) कराना, भोजन कराना, रसोई पकाना, सूत कातना तथा छह प्रकार का आरम्भ अर्थात् जीवघात की कारणभूत क्रियायें आर्यिकाओं के लिए पूर्णतः निषिद्ध हैं। संयतों के पैरों में मालिश करना, उनका प्रक्षालन करना, गीत गाना आदि कार्य पूर्णतः निषिद्ध हैं।[40] असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और लेख- ये जीवघात के हेतुभूत छह प्रकार की आरम्भ क्रियाएँ हैं।[41] पानी लाना, पानी छानना (छेण), घर को साफ करके कूड़ा-कचरा उठाना, फेंकना, गोबर से लीपना, झाड़ू लगाना और दीवालों को साफ करना- ये जीवघात करने वाली छह प्रकार की आरंभ क्रियायें भी आर्यिकायें नहीं करतीं।[42] मूलाचार के पिण्डशुद्धि अधिकार में आहार-सम्बन्धी उत्पादन के सोलह दोषों के अन्तर्गत धायकर्म, दूतकर्म आदि कार्य भी इनके लिए निषिद्ध हैं।

श्वेताम्बर परम्परा के गच्छाचारपइन्ना नामक प्रकीर्णक ग्रंथ में कहा है- जो आर्यिका गृहस्थ सम्बन्धी कार्य जैसे- सीना, बुनना, कढ़ाई आदि कार्य अपनी या दूसरे की तेल मालिश आदि कार्य करती है वह आर्यिका नहीं हो सकती।[43] जिस गच्छ में आर्यिका गृहस्थ सम्बन्धी जकार, मकार आदि रूप

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शासन की अवहेलना सूचक शब्द बोलती है वह वेश-विडम्बनी तथा अपनी आत्मा को चतुर्गति में घुमाने वाली है।[44]

आहारार्थ गमन-विधि

आहारार्थ अर्थात् भिक्षाचर्या के लिए वे आर्यिकायें तीन, पाँच अथवा सात की संख्या में स्थविरा (वृद्धा)आर्यिका के साथ मिलकर उनका अनुगमन करती हुई तथा परस्पर एक दूसरे के रक्षण (सँभाल) का भाव रखती हुई ईर्या समितिपूर्वक आहारार्थ निकलती हैं।[45] देव-वन्दना आदि कार्यों के लिए भी उपर्युक्त विधि से गमन करना चाहिए।[46] आर्यिकाएँ दिन में एक बार सविधि बैठकर करपात्र में आहार ग्रहण करती हैं।[47] गच्छाचार पइन्ना में कहा है- कार्यवश लघुआर्या मुख्यआर्या के पीछे रहकर अर्थात् स्थविरा के पीछे बैठकर श्रमण-प्रमुख के साथ सहज, सरल और निर्विकार वाक्यों द्वारा मृदु वचन बोले तो वही वास्तविक गच्छ कहलाता है।[48]

स्वाध्याय सम्बन्धी विधान-

मुनि और आर्यिका सभी के लिए स्वाध्याय आवश्यक होता है। वट्टकेर ने स्वाध्याय के विषय में आर्यिकाओं के लिए लिखा है कि गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली तथा अभिन्नदशपूर्वधर- इनके द्वारा कथित सूत्रग्रंथ, अंगग्रंथ तथा पूर्वग्रंथ- इन सबका अस्वाध्यायकाल में अध्ययन मन्दबुद्धि के श्रमणों और आर्यिका समूह के लिए निषिद्ध है। अन्य मुनीश्वरों को भी द्रव्य-क्षेत्र-काल आदि की शुद्धि के बिना उपर्युक्त सूत्रग्रंथ पढ़ना निषिद्ध है। किन्तु इन सूत्रगंथों के अतिरिक्त आराधनानिर्युक्ति, मरणविभक्ति, स्तुति, पंचसंग्रह, प्रत्याख्यान, आवश्यक तथा धर्मकथा सम्बन्धी ग्रंथों को एवं ऐसे ही अन्यान्य ग्रन्थों को आर्यिका आदि सभी अस्वाध्याय काल में भी पढ़ सकती हैं।[49]

वंदना-विनय संबंधी व्यवहार-

यह पहले ही कहा गया है कि शास्त्रों के अनुसार सौ वर्ष की दीक्षित आर्यिका से भी नवदीक्षित श्रमण को पूज्य और ज्येष्ठ माना गया है। अतः स्वाभाविक है कि आर्यिकायें श्रमण के प्रति अपना विनय प्रकट करती हैं। आर्यिकाओं के द्वारा श्रमणों की वन्दना विधि के विषय में कहा है कि आर्यिकाओं को आचार्य की वन्दना पाँच हाथ दूर से, उपाध्याय की वन्दना छह हाथ दूर से एवं साधु की वन्दना सात हाथ दूर से गवासन पूर्वक बैठकर ही करनी चाहिए।

यहाँ सूरि (आचार्य), अध्यापक (उपाध्याय) एवं साधु शब्द से यह भी सूचित होता है कि आचार्य से पाँच हाथ दूर से ही आलोचना एवं वन्दना करना चाहिए। उपाध्याय से छह हाथ दूर बैठकर अध्ययन करना चाहिए एवं सात हाथ दूर से साधु की वन्दना, स्तुति आदि कार्य करना चाहिए, अन्य प्रकार से नहीं। यह क्रमभेद आलोचना, अध्ययन और स्तुति करने की अपेक्षा से हो जाता है।[50] मोक्षपाहुड (गाथा 12) की टीका के अनुसार श्रमण और आर्यिका के बीच परस्पर वन्दना उपयुक्त तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है, किन्तु यदि आर्यिकायें वंदना करें तो श्रमण को उनके लिए 'समाधिरस्तु' या कर्मक्षयोऽस्तु' कहना चाहिए। श्रावक जब इनकी वन्दना करता है तो उन्हें सादर 'वन्दामि' शब्द बोलता है।

आर्यिका और श्रमण संघ : परस्पर सम्बन्धों की मर्यादा-

आचार-विषयक जैन आगम-साहित्य में श्रमण संघ को निर्दोष एवं सदा अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अनेक दृष्टियों से स्त्रियों के संसर्ग से, चाहे वह आर्यिका भले ही हो, दूर रहने का विधान किया है। यही कारण है कि श्रमण संघ आरम्भ से अर्थात् प्राचीन काल से आज तक बिना किसी बाधा या अपवाद के अपनी अक्षुण्णता बनाये हुए है।

श्रमणों और आर्यिकाओं का सम्बन्ध (परस्पर व्यवहार) धार्मिक कार्यों तक ही सीमित है। यदि आवश्यक हुआ तो कुछ आर्यिकाएँ एक साथ मिलकर श्रमण से धार्मिक शास्त्रों के अध्ययन, शंका-समाधान आदि कार्य कर सकती हैं, अकेले नहीं। अकेले श्रमण और आर्यिका को परस्पर बातचीत तक का निषेध है। कहा भी है कि तरुण श्रमण किसी भी तरुणी आर्यिका या अन्य किसी स्त्री से कथा-वार्तालाप न करे। यदि इसका उल्लंघन करेगा तो आज्ञाकोप, अनवस्था (मूल का ही विनाश), मिथ्यात्वाराधना, आत्मनाश और संयम-विराधना- इन पाप के हेतुभूत पाँच दोषों से दूषित होगा।[51]

अध्ययन या शंका-समाधान आदि धार्मिक कार्य के लिए आर्यिकाएँ या स्त्रियाँ यदि श्रमण संघ आयें तो उस समय श्रमण को वहाँ अकेले नहीं ठहरना चाहिए और बिना प्रयोजन वार्तालाप नहीं करना चाहिए, किन्तु कदाचित् धर्मकार्य के प्रसंग में बोलना भी ठीक है।[52] एक आर्यिका कुछ प्रश्नादि पूछे तो अकेला श्रमण उसका उत्तर न दे, अपितु कुछ श्रमणों के सामने उत्तर दे। यदि कोई आर्यिका अपनी पुस्तक अर्थात् आर्यिका गणिनी के साथ या उसे आगे करके कोई प्रश्न पूछे तब अकेले श्रमण उसका उत्तर दे सकता है अर्थात् मार्ग- प्रभावना की इच्छा रखते हुए प्रश्नोत्तरों आदि का प्रतिपादन करना चाहिए, अन्यथा नहीं।[53]

आर्यिकाओं की वसतिका में श्रमणों को नहीं जाना, ठहरना चाहिए, वहाँ क्षणमात्र या कुछ समय तक की (अल्पकालिक) क्रियाएँ भी नहीं करनी चाहिए। अर्थात् वहाँ बैठना, लेटना, स्वाध्याय, आहार, भिक्षा-ग्रहण, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग एवं मलोत्सर्ग आदि क्रियाएँ पूर्णतः निषिद्ध हैं।[54]

वृद्ध, तपस्वी, बहुश्रुत और जनमान्य (प्रामाणिक) श्रमण भी यदि आर्याजन (आर्यिका आदि) से संसर्ग रखता है तो वह लोकापवाद का भागी (लोगों की निन्दा का पात्र) बन जाता है।[55] तब जो श्रमण अवस्था में तरुण हैं, बहुश्रुत भी नहीं हैं और न जो उत्कृष्ट तपस्वी और चारित्रवान् हैं वे आर्याजन के संसर्ग से लोकापवाद के भागी क्यों नहीं होंगे? अर्थात् अवश्य होंगे अतः यथासम्भव इनके संसर्ग से दूर रहकर अपनी संयम-साधना करनी चाहिए।

आर्यिकायों के उपाश्रय में ठहरने वाला श्रमण लोकापवाद रूप व्यवहार-निन्दा तथा व्रतभंग रूप

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परमार्थ-निन्दा इन दोनों को प्राप्त होता है।[56] इस प्रकार साधु को केवल आर्याजनों के संसर्ग से ही दूर नहीं रहना चाहिए, किन्तु अन्य भी जो-जो वस्तु साधु को परतन्त्र करती है उस-उस वस्तु का त्याग करने हेतु तत्पर रहना चाहिए। उसके त्याग से उसका संयम दृढ़ होगा। क्योंकि बाह्य वस्तु के निमित्त से होने वाला असंयम उस वस्तु के त्याग से ही सम्भव होता है।[57]

आर्यिकाओं के गणधर-

आर्यिकाओं की दीक्षा, शंका-समाधान, शास्त्राध्ययन आदि कार्यों के लिए श्रमणों के सम्पर्क में आना भी आवश्यक होता है। श्रमण संघ की व्यवस्था के अनुसार साधारण श्रमणों की अकेले आर्यिकाओं से बातचीत आदि का निषेध है। आर्यिकाओं को प्रतिक्रमण, स्वाध्याय आदि विधि सम्पन्न कराने के लिए गणधर मुनि की व्यवस्था का विधान है।

आर्यिकाओं के गणधर (आचार्य आदि विशेष) को निम्नलिखित गुणों से सम्पन्न माना गया है। प्रियधर्मा, दृढ़धर्मा, संविग्नी (धर्म और धर्मफल में अतिशय उत्साह वाला), अवद्य (पाप) भीरू, परिशुद्ध (शुद्ध आचरण वाले), संग्रह (दीक्षा, उपदेश आदि द्वारा शिष्यों के ग्रहण-संग्रह) और अनुग्रह में कुशल, सतत सारक्षण (पापक्रियाओं से सर्वथा निवृत्ति) से युक्त, गंभीर दुर्द्धर्ष (स्थिर चित्त एवं निर्भय अन्तःकरण युक्त), मितभाषी, अल्पकौतुकयुक्त, चिरप्रवर्जित और गृहीतार्थ (तत्त्वों के ज्ञाता) आदि गुणों से युक्त गणधर (आचार्य) आर्यिकाओं के मर्यादा उपदेशक होते हैं।[58]

इन गुणों से युक्त श्रमण तो अपने आप में पूर्णत्व को प्राप्त करने वाला होता है और यह तो श्रमणत्व की कसौटी भी है। ऐसे ही गणधर आर्यिकाओं को आदर्श रूप में प्रतिक्रमणादि विधि सम्पन्न करा सकते हैं। उपुर्यक्त गुणों से रहित श्रमण यदि गणधरत्व धारण करके आर्यिकाओं को प्रतिक्रमण कराता एवं प्रायश्चित्तादि देता है तब उसके गणपोषण, आत्मसंस्कार, संल्लेखना और उत्तमार्थ- इन चार कालों की विराधना होती है। अथवा छेद, मूल, परिहार और पारंचिक- ये चार प्रायश्चित लेने पड़ते हैं। साथ ही ऋषिकुल रूप गच्छ या संघ, कुल, श्रावक एवं मिथ्यादृष्टि आदि इन सबकी विराधना हो जाती है। अर्थात् गुणशून्य आचार्य यदि आर्यिकाओं का पोषण करते हैं तो व्यवस्था बिगड़ जाने से संघ के साधु उनकी आज्ञा पालन नहीं करेंगे। इससे संघ और उसका अनुशासन बिगड़ता है।

इस प्रकार श्रमणसंघ के अन्तर्गत आर्यिकाओं की विशिष्ट आचार पद्धति और उसकी महत्ता का यहाँ प्रतिपादन किया गया, शेष नियमोपनियम श्रमणों जैसे ही हैं।

सन्दर्भः-

1. मूलाचार सवृत्ति, 4.187
2. ण विणा वट्टदि णारी एक्कं वा तेसु जीवलोयम्हि।
   ण हि संउडं च गत्तं तम्हा तासिं च संवरणं ।। प्रवचनसार, 225. 5
3. स्त्रीणामपि मुक्तिर्न भवति महाव्रताभावात् ।- मोक्खपाहुड टीका, 12

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

4. वरिससयदिक्खियाए अज्जाए अज्ज दिक्खिओ साहू।
अभिगमण वंदण नमंसणेण विणएण सो पुज्जो ।। मोक्खापाहुड, टीका 12.1
5. प्रवचनसार, 225/7
6. सुत्तपाहुड, गाथा 7
7. सुत्तपाहुड, 26
8. बृहत्कल्प 5/19-34 तक (चारित्र प्रकाश, पृष्ठ 139)
9. अंगुत्तरनिकाय 1.9
10. भगवती आराधना 396 तथा वि. टीका 421
11. मूलाचार 4.177, 184,185,187,191,196, सुत्तपाहुड 22
12. वही, 4.180, 10.61
13. मूलाचार वृत्ति 4.177
14. त्यक्ताशेषगृहस्थवेषरचना मंदोदरी संयता - पद्मपुराण
15. श्रीमती श्रमणी पार्श्वे बभूवुः परमार्यिका।- पद्मपुराण
16. गणिणी...मूलाचार 4.178, 192, गणिनीं महत्तरिकां- पद्मपुराण वृत्ति 4.178, 192
17. थेरीहिं सहंतरिदा भिक्खाय समोदरंति सदा।- मूलाचार 4.194
18. मूलाचार 4.190
19. मूलाचार वृत्ति 4.190
20. सुत्तपाहुड 10, 21,22
21. लिंगं इत्थीणं हवदिं भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ।।- सुत्तपाहुड 22
22. सुत्तपाहुड, श्रुतसागरीय टीका, 22
23. खुड्डा य खुड्डियाओ.....भगवती आराधना, 396
24. भगवती आराधना 79
25. भगवती आराधना 80 विजयोदया टीका सहित
26. सागारधर्मामृत 8.37
27. आर्यिकाणामागमे अनुज्ञातं वस्त्रं कारणापेक्षया-भगवती आराधना विजयोदया, 423, पृ. 324
28. प्रवचनसार, गाथा 225 के बाद प्रक्षेपक गाथा 5
29. क्रियाकोशः महाकवि दौलतरामकृत
30. प्रायश्चित्त संग्रह, 119
31. आचारांग सूत्र 2.5.141
32. गच्छाचार पइन्ना 112
33. अगिहत्थमिस्सणिलये असण्णिवाए विसुद्धसंचारे।
दो तिण्णि व अज्जाओ बहुगीओ वा सहत्थंति।। मूलचार 4.191 वृत्तिसहित
33. बृहत्कल्प भाष्य, 1.2, 2.11,1

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

34. बृहत्कल्प सूत्र, प्रथम उद्देश, प्रतिबद्धशय्यासूत्र (जै.सा.का वृ. इति. भाग 2, पृ. 241)
35. अण्णोणणणुकूलाओ अण्णोण्णाहिरक्खणाभिजुत्ताओ।
गयरोसवेरमायासलज्जमज्जादकिरियाओ।। मूलाचार 4.188
36. ज्ञानार्णव 12.57
37. हिस्ट्री ऑफ जैन मोनासिज्म, पृ. 473
38. मूलाचार 4.189
39. ण य परगेहमकज्जे गच्छे कज्जे अवस्सगमणिज्जे।
गणिणीमापुच्छित्ता संघाडेणेव गच्छेज्ज।।- मूलाचार 4.192
40. रोदणण्हावणभोयजपयणं सुत्तं च छव्विहारंभे।
विरदाण पादमक्खण धोवणगेयं च ण य कुज्जा।। - मूलाचार 4.193
41. असिमषिकृषि वाणिज्यशिल्पलेखक्रियाप्रारम्भास्तान् जीवघातहेतून्। - मूलाचार वृत्ति 4.193
42. कुन्द मूलाचार 4.74
43. गच्छाचार पइन्ना 113
44. वही 110
45. तिण्णि व पंच व सत्त व अज्जाओ अण्णमण्णरक्खाओ।
थेरीहिं सहंतरिदा भिक्खाय समोदरन्ति सदा। मूलाचार 4.194
46. मूलाचार, 4.194 की वृत्ति
47. सुत्तपाहुड श्रुतसागरीय टीका 22 तथा दौलत क्रियाकोश
48. गच्छाचार पइन्ना, 129-130
49. मूलाचार 5.80-82, वृत्तिसहित
50. पंच छ सत्त हत्थे सूरी अज्झावगो य साधु य।
परिहरिऊण ज्जाओ गवासणेणेव वंदंति।। - मूलाचार 4.195 वृत्ति सहित
51. मूलाचार 4.179 वृत्ति सहित
52. वही 4.177 वृत्ति सहित
53. तासिं पुण पुच्छाओ इक्किस्से णय कहिज्ज एक्को दु।
गणिणी पुरओ किच्चा जदि पुच्छइ तो कहेदव्वं।। वही, 4.178 वृत्ति सहित
54. मूलाचार 4.180, 10.61 वृत्ति सहित
55. मूलाचार, 331
56. मूलाचार 10.62
57. भगवती आराधना, गाथा 334, 338
58. मूलाचार 4.183, 184, बृहत्कल्प भाष्य 2050

-प्रोफेसर, जैन दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी-221010

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org